International Journal of Hindi Research
ISSN: 2455-2232
Impact Factor: RJIF 5.22
www.hindijournal.com
Volume 4; Issue 4; July 2018; Page No. 01-04

डॉ० नरेंद्र कोहली का आध्यात्मिक चिंतन (महासमर के 'गीतासार' के सन्दर्भ में)

पूजा भट्ट[1], डॉ० सरला पण्ड्या[2]
[1] शोधार्थी, पेसीफिक युनिवर्सिटी, उदयपुर राजस्थान, भारत।
[2] व्याख्याता, श्री गोविंद गुरू राजकीय महाविद्यालय, बाँसवाडा, राजस्थान, भारत।

प्रस्तावना

"नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्
दैवी सरस्वतीं व्यासं ततौ जयमुदीरयेत्"

(नारायण को, मनुष्य मे जो श्रेष्ठ नर है उसको, सरस्वती देवी को, और व्यासजी को नमस्कार करके फिर जय अर्थात् महासमर के गीता सार को) नरेंद्र कोहली जी साहित्य जगत के एक सम्मानित, लब्ध, प्रतिष्ठित, बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न साहित्यकार है। साहित्य जगत में कोहली जी का नाम पौराणिक आध्यात्म जगत में सर्वोपरि है।

डॉ० गोपाल राय के शब्दों में

नरेंद्र कोहली अपने समकालीन साहित्यकारों से पर्याप्त भिन्न हैं। उन्होंने प्रख्यात कथाएं लिखी हैं वे सर्वथा मौलिक हैं। वे आधुनिक हैं, किन्तु पश्चिम का अनुकरण नहीं करते। भारतीयता की जड़ों तक पहुँचते हैं, किन्तु पुरातनपंथी नहीं हैं।

डॉ नरेंद्र कोहली जी ने उपन्यासो के साथ–साथ व्यंग्य, कहानी, बाल–साहित्य, निबन्ध, नाटक, समीक्षा आदि की रचना कर साहित्य जगत में अपना अपूर्व स्थान बनाया (1)। कोहली जी ने अधिकांशतः पौराणिक ग्रंथो को आधार बनाकर अपनी रचनाए लिखी है। इसके अतिरिक्त ऐतिहासिक, वैज्ञानिक, सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक प्राचीन व नवीन सभ्यता आदि जैसे गहन विषय को आधार बनाकर अनूठा साहित्य संसार निर्मित किया। उन्होने न केवल व्यवहारिक विषयों को ही अपनी रचना का केंद्र बनाया है, बल्कि उपयोगी साहित्य, भाष्य, धर्म, दर्शन संस्कृति जैसे विषयों पर भी लेखनी चलाई है।

इस विषय के प्रति आकर्षण यूं ही नही हुआ बल्कि एकांत के क्षणो में कोहली जी की कुछ रचनाए पढी, विशेषतः "न भूतो न भविष्यति", तोडो कारा तोडो, महासमर के भाग (2 अधिकार और बंधन) (3) कर्म और व्यंग्य रचना 'त्राहि.–त्राहि' को शिक्षा और रोचकता की दृष्टि से पढा तो उनकी रचनओ में एक अलग–सा कौतुहल, अलग सी जिज्ञासा उत्पन्न हुई (2)। तभी निश्चय कर लिया कि क्यो न ऐसे प्रतिभा सम्पन्न व्यक्तित्व पर कार्य किया जाये ?? सौभाग्य से प्रकाशन हेतु मेरी जिज्ञासानुसार मुझे यह विषय भी मिल गया। अपनी शोध निर्देशिका डॉ. सरला पंड्या जी से परामर्श के पश्चात मेरी इस जिज्ञासा को बल मिला।

डॉ० नरेंद्र कोहली का आध्यात्मिक चिंतन क्या है

आध्यात्म का अर्थ अपने भीतर के चेतन तत्व को जगाना, मनाना और दर्शन करना अर्थात् अपने आप के बारे में जानना या आत्म–प्रज्ञ होना। गीता के आठवें अध्याय में अपने स्वरुप अर्थात जीवात्मा को 'आध्यात्म' कहा गया है।

"परमं स्वभावोऽध – यात्ममुच्य – ते"

आत्मा परमात्मा का अंश है यह तो सर्वविदित है। जब इस सम्बन्ध में शंका या सन्शय की स्थिति अधिक क्रियामान होती है तभी हमारी दूरी बढती जाती है और विभिन्न रुपों से अपने को सफल बनाने का निरर्थक प्रयास जिनका परिणाम नकारात्मक ही होता है। ये तो असम्भव सा जान पडता है – मिट्टी के बर्तन मिट्टी से अलग पहचान बनाने की कोशिश करें तो कोई क्या कहे ?? यह विषय विचारणीय है।

आध्यात्म की अनुभूति सभी प्राणियों में समान रुप से निरन्तर होती रहती है। स्वयं की खोज तो सभी कर रहे है, परोक्ष व अपरोक्ष रूप से। परमात्मा के असीम प्रेम की एक बूंद मानव में पायी जाती है जिसके कारण हम उनसे सन्युक्त होते है किंतु कुछ समय बाद इसका लोप हो जाता है और निराश हो जाते है, संसार के बंधनों में आनंद ढूंढते ही रह जाते है परन्तु क्षणिक ही खुशी पाते है।

डॉ नरेंद्र कोहली नें प्रकृति के विराट रुप में जीवन को प्रकृति के अनुकूल बनाने के लिये आध्यात्मिक साधना की बात कही है। अपनी क्षमताओं की प्राप्ति के लिये धैर्य पूर्वक व्यक्ति को संयम, साधना और उपचार के मार्ग से प्रकृति की शरण में जाना चाहिये। व्यक्ति को अपना अहंकार त्याग कर प्रकृति के अनुकूल बनने की चेष्टा करनी चहिये। भौतिक सिद्दियो के लिए आध्यात्मिक साधनो का प्रयोग करने की भूल नही करनी चाहिये।

आध्यात्म की वर्तमान में आवश्यकता क्यो है ?

जब हम क्षणिक सम्बन्धो, क्षणिक वस्तुओं को अपना जान कर उसमे आनन्द मनाते है जबकि हर पल साथ रहने वाला शरीर भी हमें अपना गुलाम बना देता है। हमारी इन्द्रियां – अपने आप से अलग कर देती है यह इतनी सूक्ष्मता से करती है – हमें महसूस भी नही होता की हमने यह काम किया है।

जब हमे सत्य की समझ आती है तो जीवन का अंतिम पडाव आ जाता है व पश्चाताप के सिवाय कुछ हाथ नही लग पाता। ऐसी स्थिति का हमें पहले ही ज्ञान हो जाए तो शायद हम अपने जीवन में पूर्ण आनंद की अनुभूति के अधिकारी बन सकते है। हमारा इहलोक तथा परलोक भी सुधर सकता है। अब प्रश्न यह उठता है की यह ज्ञान क्या हम अभी प्राप्त कर सकते है ??

हाँ !! हम अभी जान सकते है की अंत समय में किसकी स्मृति होगी, हमारा भाव क्या होगा ?? हम फिर अपने भाव में अपेक्षित सुधार करेंगे।

गीता के आठवें अध्याय श्लोक संख्या छः में भी बताया गया है (3)–

यंयवापि स्मरंभावं – त्यजत्यंत– कलेवरम्।
तं तमेवैति कौंतेय सदा तद्दाव भावितः।।
(श्रीमद्भगवद् गीता अध्याय आठ (8) श्लोक छः (6) (4)

अर्थात – "है कुंतिपुत्र – अर्जुन ! यह मनुष्य अंतकाल में जिस–जिस भी भाव को स्मरण करता हुआ शरीर का त्याग करता है, वह उसको ही प्राप्त होता है, क्योंकि वह सदा उसी भाव से भावित रहता है।"
एक संत ने इसे बताते हुए कहा था कि सभी अपनी– अपनी आंखे बंद कर यह स्मरण करें कि सुबह अपनी आंखे खोलने से पहले हमारी जो चेतना सर्वप्रथम जागती है उस समय हमे किसका स्मरण होता है ? बस उसी का स्मरण अंत समय में होगा। अगर किसी को भगवान के अतिरिक्त किसी अन्य चीज का स्मरण होता है तो अभी से वे अपने को सुधार लें और निश्चित कर लें की हमारी आंखे खोलने से पहले हम अपने चेतन मन में भगवान का ही स्मरण करेंगे। बस हमारा काम बन जाएगा नही तो हम जीती बाजी भी हार जायेंगे।
कदाचित् अगर किसी की बीमारी के कारण या अन्य कारण से बेहोशी की अवस्था में मृत्यु हो जाती है तो दीनबंधु भगवान उसके नित्य प्रति किये गए इस छोटे से प्रयास को ध्यान में रखकर उन्हे स्मरण करेंगे और उनका उद्दार हो जाएगा क्योकि परमात्मा परम दयालु है जो हमारे छोटे प्रयास से द्रवीभूत हो जाते है।

डॉ. नरेंद्र कोहली की आध्यात्मिक अनुभूति महासमर के 'गीतासार' के संदर्भ में

श्रीमद् भगवद् गीता हमारे धर्म ग्रंथो का एक अत्यंत तेजस्वि और निर्मल हिरा है। पिंड –ब्रह्मांड ज्ञान सहित आत्मविद्या के गूढ और पवित्र तत्वो को थोडे में और स्पष्ट रीति से समझा देनेवाला, उन्ही तत्वो के आधार पर मनुष्य मात्र के पूरूषार्थ की अर्थात् आद्यात्मिक पूर्णावस्था कि पहचान करा देने वाला, भक्ति और ज्ञान का मेल कराके इन दोनो का शास्त्रोक्त व्यवहार के साथ सयोंग करा देने वाला और इसके द्वारा संसार से त्रस्त मनुष्य को शांति देकर उसे निष्काम कर्तव्य के आचरण में इसके द्वारा संसार से त्रस्त मनुष्य को शांति देकर निष्काम कर्तव्य के आचरण मे लगाने वाला गीता के समान बालबोध ग्रंथ, संस्कृत की कोन कहे, समस्त संसार के साहित्य में भी नहीं मिल सकता।
केवल काव्य कि दृष्टी से यदि इसकी परीक्षा की जाए तो भी यह ग्रंथ उत्तम काव्यो में गीना जा सकता है क्योंकि इसमे आत्मज्ञान के अनेक गूढ सिद्दांत एसी प्रासादिक भाषा में लिखे गये है, कि वे बूढो और बच्चो को एक समान सुगम है और इसमे ज्ञानयुक्त भक्ति रस भी भरा पडा है। जिस ग्रंथ में समस्त वैदिक धर्म का सार स्वयं श्रीकृष्ण भगवान की वाणी से संगृहित किया है, उनकी योग्यता का वर्णन कैसे किया जाए ???
महाभारत की लडाई समाप्त होने पर एक दिन श्रीकृष्ण और अर्जुन प्रेम पूर्वक बातचीत कर रहे थे। उस समय अर्जुन के मन मे ईच्छा हुइ कि श्रीकृष्ण से एक बार फिर गीता सुनें। तुरंत अर्जुन ने विनती की "महाराज ! आपने जो उपदेश मुझे युद्द के आरम्भ मे दिया था उसे में भूल गया हूँ। कृपा करके फिर एक बार उसे बतलाईए" तब श्रीकृष्ण भगवान ने उत्तर दिया कि "उस समय मेंने अत्यंत योगयुक्त अंतःकरण से उपदेश किया था। अब सम्भव नहीं कि मैं वैसे ही उपदेश फिर कर सकूँ।" सच पूछे तो श्रीकृष्ण भगवान के लिये कूछ भी असम्भव नहीं हैं, उनके उक्त कथन से यह बात अच्छी तरह मालूम हो सकती है कि गीता का महत्व कितना अधिक है। यह ग्रंथ, वैदिक धर्म के भिन्न–भिन्न सम्प्रदायों में वेद के समान, आज करीब ढाई हजार वर्षों से सर्वमान्य तथा प्रमाण स्वरूप हो गया है इसका कारण भी उक्त ग्रंथ का महत्व ही है। श्रीमद्भगवद् गीता आपने आप में एक परिपूर्ण ग्रन्थ है। यह हमारा इतिहास एवम् हमारा आध्यात्म है। श्रीमद्भगवद् गीता अनंत शाश्वत सत्य है।

('महासमर' उपन्यास का सातवाँ खण्ड 'प्रत्यक्ष') (4)

भगवान श्री कृष्ण कहते हैं....

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः।
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत्।।

जीवात्मा का विनाश करने वाले काम, क्रोध और लोभ यह तीन प्रकार के द्वार मनुष्य को नरक में ले जाने वाले हैं, इसलिये मनुष्य को इन तीनों से मुक्त होने का प्रयास करना चाहिये।

(श्रीमद् भगवद् गीता अध्याय 16 श्लोक 21) (5)

एतैर्विमुक्तः कौन्तेय तमोद्वारैस्त्रिभिर्नरः।
आचरत्यात्मनः श्रेयस्ततो याति परां गतिम्।।

जो मनुष्य इन तीनों नरक के द्वारों से मुक्त हो जाता है, वह मनुष्य अपनी आत्मा में स्थित रहकर संसार में कल्याणकारी कर्म का आचरण करता हुआ परमात्मा रूपी परमगति मोक्ष को प्राप्त हो जाता है।
(श्रीमद् भगवद् गीता अध्याय 16 श्लोक 22) (6)

जीवात्मा बूँद है परमात्मा सागर है। बूँद का सागर बनना ही बूँद के जीवन का एकमात्र लक्ष्य है, बूँद जब–तक स्वयं के अस्तित्व को सागर के अस्तित्व से अलग समझती रहती है तब–तक बूँद के अन्दर सागर से मिलने की कामना उत्पन्न ही नहीं होती है।
बूँद में इतना सामर्थ्य नहीं है कि वह अपने बल पर सागर से मिल सके, बूँद में जब–तक सागर से मिलने की कामना के अतिरिक्त अन्य कोई कामना शेष नहीं रह जाती है तब–तक बूँद का सागर से मिलन असंभव ही होता है।
जब बूँद में सागर से मिलने की पवित्र कामना उत्पन्न होती है तो एक दिन सागर की एक एसी लहर आती है जो बूँद को स्वयं में समाहित कर लेती है तब वही बूँद सागर बन जाती है।
बूँद सागर का अंश है, सागर के गुण ही बूँद में होते हैं, बूँद स्वयं को सागर बनाने का निरन्तर प्रयत्न तो करती है लेकिन अहंकार से ग्रसित होने के कारण बूँद उन गुणों को स्वयं का समझने लगती है, इस कारण बूँद का ज्ञान अहंकार रूपी चादर से ढ़क जाता है।
इस अहंकार रूपी चादर को हटाने की विधि का पता न होने के कारण ही बूँद सागर नहीं बन पाती है, शास्त्रों के अनुसार बूँद के सागर बनने की प्रक्रिया तीन सीढीयों को क्रमशः एक–एक करके पार करने के बाद ही पूर्ण होती है।

पहली सीढी

धर्म– यानि शास्त्र विधि के अनुसार कर्तव्य पालन करके, क्रोध से मुक्त होना।

दूसरी सीढी
अर्थ– यानि कर्तव्य पालन में आवश्यकता के अनुसार धन–संपत्ति का अर्जन करके, धन–संपत्ति के लोभ से मुक्त होना।

तीसरी सीढी
काम– यानि कर्तव्य पालन में आवश्यकता के अनुसार अपनी कामनाओं की पूर्ति करके, कामनाओं से मुक्त होना।

तीनों सीढीयों को पार करने के पश्चात ही मंजिल पर पहुँचकर परमात्मा का दर्शन यानि मोक्ष की प्राप्ति होती है, इन्हीं को शास्त्रों ने पुरुषार्थ कहा है।
कर्तव्य पालन की इच्छा में व्यवधान आने से क्रोध उत्पन्न हो जाता है, और कर्तव्य पालन की इच्छा पूर्ण होने से लोभ उत्पन्न हो जाता है, जो मनुष्य दोनों स्थितियों में सम–भाव में रहता हुआ निरन्तर अपने कर्तव्य पालन में लगा रहता है तो वह क्रोध, लोभ और कामना रूपी सीड़ीयों को पार करके शीघ्र ही मंजिल यानि सहज रुप से "मोक्ष" प्राप्त हो जाता है।
जिस प्रकार पहली कक्षा को पास किये बिना कोई भी छात्र दूसरी कक्षा को पास नहीं कर सकता है और दूसरी कक्षा को पास किये बिना तीसरी कक्षा को पास करना असंभव है, उसी प्रकार क्रोध रूपी पहली सीड़ी को पार किये बिना कोई भी मनुष्य लोभ रूपी दूसरी सीड़ी को पार नहीं कर सकता है और लोभ के त्याग के बिना तीसरी सीड़ी यानि कामनाओं से मुक्त होना असंभव है।

आध्यात्मिक चिंतन का उद्देश्य
जीवन में कभी– कभी ईच्छाए पूरी हो जाती है, सपने भी पूरे हो जाते है, लेकिन बोद्दिक–स्तर पर हम संतुष्ठ नही हो पाते और कभी शारीरिक, मानसिक तथा बोद्दिक इन तीनों स्तर पर पर संतुष्ठ होने के बावजुद भी एक अधूरेपन का अहसास हमारा पीछा नही छोडता। हम किसी परिस्थिति में प्रसन्न नही रह पाते क्योंकि हमारे व्यक्तित्व की चारों इकाइयां शरीर, मन, बुद्दि एक–दूसरे से सामन्जस्य स्थापित न कर सकने के कारण, एक–दूसरे के विरोधी होकर हमे अपनी–अपनी ओर खींचते है परिणाम स्वरुप हमारी प्रसन्नता हमारा आनंद सब कुछ धीरे–धीरे बिखरने लगता है। पर हम तो ईश्वर की सर्वश्रेष्ठ रचना और बुद्दिजीवी हैं, ऐसे कैसे हार मान सकते है ?
हमारे लिए तो हमारे ऋषियों ने परिस्थितियों के 'स्वामि' बनने का स्वप्न देखा है, हम उसे निष्फल कैसे जाने दे सकते है ? हमारे ऋषियों ने सुष्म विश्लेषण करने पर पाया कि हमारे शारीरिक, मानसिक तथा बोद्दिक रुप से शांत क्षणो में भी एक दबी हुई निरूशब्द पुकार हमारे अंतरतम की गहराई से उठती है कि कुछ ऐसा करना या पाना है, जिससे जीवन के वास्तविक रुप से साक्षात्कार हो जाए और यह पुकार इतनी गहरी तथा तीव्र होती है कि उसे नकारा भी नहीं जा सकता। इसी का नाम आध्यात्मिक पुकार है।
भीड में जाकर शांति, सुख तथा स्वास्थ्य की कामना करना एक तरह से मुर्खता है। अक्सर लोग दुनियादारी से ऊब कर कही सत्सगं या पर्यटन के लिये जाना चाहते है पर उनको लगता है कि कोई दूसरा परिवार या समूह साथ होना चाहिये। समूह मे जा कर आनंद प्राप्त करने कि ईच्छा अंततरू मूल उद्देश्य से मनुष्य को भटका देति है।
लोग एक भीड से ऊबकर दूसरी भीड में जाकर रस लेना चाहते हैं पर भला एक समय दो लक्ष्य कैसे प्राप्त किये जा सकते है। साथी एवं सत्संग एक साथ मिलना सम्भव नही है। दरअसल भीड में रहते हुए आदमी एकांत से घबराने लगता है। समूह में चलने की उनकी आदत कही भी नही जाती। वह सुख, शांति और आनंद चाहता है पर अकेले नही जबकि इसकि अनुभूति केवल एकांत में ही की जा सकती है।
"अपने शरीर को स्वस्थ रखना भी एक तरह का तप या यज है।"
इसके लिए हम चाहे सुबह योग साधना करे या पार्क में सैर, यह महत्वपूर्ण नही है जितना यह कि हम उसे यज्ञ या तप की तरह करते है या केवल मन बहला ने के लिये भीड के साथ चलते है। अनेक लोग सुबह झुंड बनाकर सैर के लिये निकलते है। उनके बीच वही बातें होती है जो उनके प्रतिदिन की दिनचर्या का बयान करती है। वह साथ चलते हुए निंदा, आलोचना तथा सांसारिक बातों में बिता देते है।
चलने से शरीर को लाभ तो होता है परंतु उनकी चर्चाओं से मन, बुद्दि तथा विचार में शुद्दता नही आ पाती जिससे मस्तिष्क स्वस्थ नही रहता है। उसी तरह सत्संग या भ्रमण में लोगों को साथी चाहिए। अक्सर लोग कहते है कि 'कोइ साथी नही मिलता इसलिए आद्यात्मिक विषय से नही जुड पाते'। यह कथन दरअसल आदमी के दिमागी आलस्य या मानसिक विलासिता के अलावा कुछ नही है। अगर स्वयम ही मन मे संकल्प हो तब किसी साथ की आवश्यकता नही है।

नीति विशारद चाणक्य इस विषय में कहते है कि–

एकाकिना तयो द्वाभ्यां पठनं गायनं त्रिभीः
चतुर्भिगर्नम श्रैत्रं पंचभिर्हुभिरैयाः।।

"तप अकेले होता है, अध्ययन दो के बीच, गाना तीन में होता है। यात्रा में चार व्यक्ति ठीक होते है। खेती पांच से भली भांति होती है और युद्द हमेशा बहुतों के द्वारा होता है।
(हिंदी साहित्य मार्गदर्शन चणक्य नीति पृ. ग्यारह 11) (7)

धर्म–कर्म का अटूट बंधन है – "महासमर" जिसको जोडने वाले है 'श्रीकृष्ण'। सारा संचालन श्रीकृष्ण के माध्यम से हुआ है। डॉ. नरेंद्र कोहली जी ने अनेक प्रसंगों की मौलिक उद्भावनायें की है तथा मानव–मनोवैज्ञानिक को केंद्र में रख कर यथार्थवादी दृष्टिकोण प्रदान किया है।
डॉ. नरेंद्र कोहली जी नें तात्विक विश्लेषण द्वारा मनुष्य के अनुभव–जगत के सत्य का उद्घाटन करने का भागीरथ प्रयास किये है तथा अपनी स्मृति एवं कल्पना के आधार पर कुछ अनुमानों एवं तर्क को प्रस्तुत कर आध्यात्मिक चिंतन को एक जीवंत–रुप प्रदान किया है – "मैं तो कुछ स्मृति से, कुछ कल्पना से, कुछ अनुमानों से जोडता चलता हूँ, ताकि आपके सम्मुख उस युग का एक जीवंत और पूर्ण चित्र उपस्थित हो सके"।
(डॉ. नरेंद्र कोहली कृत "महासमर" उपन्यास) (8)

उपसंहार
इक्किसवीं सदी 'गति' की प्रतिक है, वाहनो से लेकर विज्ञान के अनेकों अंगो तक, चाहे जहाँ तक भी नजर दौडाए सर्वत्र गतिशिल ही उजागर होती है। इसके विपरित कोहली जी आध्यात्मिकता 'ठहराव' का नाम है। यह स्थितप्रज्ञता की अवस्था है। प्रभु रुपी शिखर पर पहुंचे और वहीं ठहर गए। यह ठहराव मनोवस्था का है, जीवन का नही। जीवन के सभी क्रियाकलाप तो चलते रहते है, फिर भी ठहराव बना रहता है क्योंकि मन में, विचारों में, सोच में, गहराई बनी रहती है।
यहा आध्यात्मिकता एवम् इक्किसवीं सदी में विरोधाभास लगता है

जबकि ये परस्पर मिले हुए है। आइए देखें कैसे मिले हुए है ??
हर गति को विश्राम चाहिए। गति होती है विश्राम तक पहुँचने के लिए। प्राय गति के कारण थकान व तनाव पैदा होता है। तनाव के कारण असंतुलन होता है। असंतुलन से अशांति होती है। अशांति से संघर्ष होते है। संघर्ष से अराजकता होती है और अराजकता से विनाश होता है।
इक्किसवीं सदी में विनाश से बचने के लिये आध्यात्मिकता का अवलंबन चाहिए ही। आध्यात्मिकता ही इक्किसवीं सदी को स्थायी विकास की सदी बना सकती है अन्यथा तनाव, अशांति व असंतुलन विनाश अवश्यम्भावि है। आज के युग में साधनों की कमी नहीं है, कमी तो साधना की है। साधना चाहिए विशालता की, उदारता की, सत्य के प्रभाव की, जीयो और जीने दो के भाव की। वर्तमान समय मे प्रत्येंक व्यक्ति को आध्यात्मिक रूप से जागरूक होने की आवश्यकता है क्योंकि आध्यात्मिक रूप से जागृत मनुष्य ही जीवन के वास्तविक उद्देश्य को समझ सकता है। जीवन की वास्तविक खुशी और परम उद्देश्य तभी प्राप्त हो सकतें है जब आध्यात्मिक चैतन्य जागृत रहें। यहां पर यह भी ज्ञात रहें कि आध्यात्मिक चैतन्य हेतु किसी साधन या वस्तु पर निर्भर रहने की आवश्यकता नही है, वरन् स्वयं को उत्प्रेरित एवं तैयार करना होता है। भारतीय वैद और ग्रंथ भी यही इंगित करते है कि मनुष्य स्वयं अपने आध्यात्म का मार्ग प्रशस्त करता है।
ये विचार मानव मात्र के कल्याण के लिए समर्पित है।
सत्यम् शिवम् सुंदरम्

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. डॉ. नरेंद्र कोहली व्यक्तित्व एव कृतित्व।
2. डॉ. नरेंद्र कोहली कृत "महासमर"।
3. श्रीमद्भगवद् गीता अध्याय आठ (8) श्लोक छः (6)।
4. 'महासमर' उपन्यास का सातवाँ खण्ड 'प्रत्यक्ष'।
5. श्रीमद् भगवद् गीता अध्याय 16 श्लोक 21।
6. श्रीमद् भगवद् गीता अध्याय 16 श्लोक 22।
7. हिंदी साहित्य मार्गदर्शन चणक्य नीति।
8. डॉ. नरेंद्र कोहली कृत "महासमर" उपन्यास।
9. डॉ. नरेंद्र कोहली कृत " अभिज्ञान" (गीता में वर्णित कृष्ण के कर्म–सिद्दांत)।
10. डॉ. नरेंद्र कोहली कृत " महासमर" (प्रत्यक्ष, बंधन, निर्बंध, कर्म एवं धर्म)।
11. श्रीमद्भगवद् गीता यथारुप।